।। श्री हरिः ।।

विष स्वरूप हैं विषय वासनाएँ

संसार के प्रत्येक प्राणी को सच्चे सुख की अभिलाषा रहती है। चींटी से लेकर हाथी तक और कीट से लेकर ब्रह्मा तक सभी जीवनपर्यन्त सुख की खोज में जुटे रहते हैं। यह बात दीगर है कि दिन-रात एक करने के बाद भी वह सुख जीव की पहुँच के बाहर ही रहता है। संत-मनीषी कहते हैं कि सच्चा सुख वही है जो कभी नष्ट न हो, जिसमें कोई भी अभाव न हो और जो सदा रहने वाला हो अर्थात जो सुख अनन्त, अखण्ड एवं शाश्वत है उसी को सच्चा सुख कहा जा सकता है। ऐसा सुख ब्रह्मलोकपर्यन्त संसार में कहीं भी नहीं है और कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि संसार के यावन्मात्र पदार्थ अनित्य एवं नश्वर हैं, सीमित और निरन्तर ह्रास को प्राप्त हो रहे हैं। वस्तुतः जो वस्तु स्वयं प्रतिक्षण विनाश को प्राप्त हो रही है वह हमें सुख दे ही नहीं सकती। विचार करने पर यह बात प्रत्यक्ष अनुभव में आती है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।। (5/22)

अर्थात ये जो इन्द्रियों तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले भोग हैं, यद्यपि विषयी पुरूषों को सुखरूप भासते हैं, फिर भी ये दुःखों के ही हेतु हैं तथा आदि अन्त वाले हैं अर्थात अनित्य हैं। इसलिए हे अर्जुन! बुद्धिमान विवेकी पुरूष उनमें नहीं रमते। यही बात महर्षि पतंजलि के **'योग दर्शन'** में भी कहीं गई है-

परिणामतापसंस्कारदुःखर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्व विवेकिनः। (2/22)

अर्थात परिणामदुःख, तापदुःख और संस्कारदुःख - ऐसे तीन प्रकार के दुःख सबमें विद्यमान रहने के कारण तथा सात्विक, राजस, तामस - इन तीनों गुणों की वृत्तियों में विरोध होने के कारण विवेकी पुरूष के लिए सभी भोग दुःख रूप ही हैं। कठोपनिषद् में यमराज से नचिकेता भी अपना अनुभव बताते हुए कहते हैं-

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैत त्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते।। (1/1/26)

अर्थात हे यमराज! मनुष्यों के सम्पूर्ण भोग कल रहेंगे या नहीं - इस प्रकार के सन्देह से युक्त हैं तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों के तेज को जीर्ण करने वाले हैं। इसके अतिरिक्त यह सम्पूर्ण जीवन भी अत्यल्प है। अतः ये वाहन, नृत्य एवं गीत अपने पास ही रखें, मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध - ये पाँच हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों यथा आँख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा के विषय हैं जो सदैव हमारे मन को उलझाए रखते हैं। इन्हीं से प्रेरित होकर मनुष्य विभिन्न प्रकार के कर्मों में प्रवृत होता है। भोग और संग्रह की इच्छा से जो काम किए जाते हैं, वे पापमय होते हैं और परिणाम में दुःखदायी होते हैं। इसलिए वैदिक धर्मशास्त्रों में विषयों को विषस्वरूप और विकाररूप माना गया है। हमारी प्रार्थना में भी गाया जाता है - 'विषय विकार हटाओ, पाप हरो देवा।' यह विषयरूपी विष ही जीवन के अमृत भाग को शनैः शनैः कम करता जाता है और अंत में केवल मृत्यु शेष रह जाती है। अमृत के साहचर्य काल को ही जीवन कहते हैं। स्वच्छन्द यौनाचार भी आज व्यापक विष रूप में फैल चुका है। इस प्रकार के कर्म के द्वारा हम न केवल सृष्टि की ऊर्जाओं का अपमान कर रहे हैं बल्कि ईश्वरीय क्षमताओं का दुरूपयोग भी कर रहे हैं। तब निश्चित ही हमें ईश्वर का कोपभाजन होना ही पड़ेगा। वस्तुतः हमारा जन्म भी स्त्री-पुरूष के सहवास रूपी विकार के परिणामस्वरूप ही हुआ है। उसमें अन्य विकार जितने जुड़ेंगे, विष की मात्रा भी उतनी ही बढ़ेगी।

महापुरूषों का कथन हैं कि संसार के विषय-भोग जो प्रारम्भ में सुखरूप भासते हैं परिणाम में दुःखदायी ही होते हैं। जो भोजन बाहर से सुस्वादु व मधुर दिखाई देता है वह शरीर को रोगी बनाता है और जो भोजन रूखा व नीरस मालूम पड़ता है उसका परिणाम सुखदायक होता है। जब विषयभोग भरी कामनाएँ नागिन की तरह जीव को डस लेती हैं तो अनर्थकारी विष के समान नीम की कड़वी पत्ती भी मधुर लगती है। संसार में तीन

आकर्षण बड़े प्रबल माने जाते हैं - धन, स्त्री एवं पद-प्रतिष्ठा। नारी के सौंदर्य की मोहज्वाला में पड़कर कितने लोग पंतगों की भांति भस्म हो रहे हैं, यह समाचार-पत्रों में प्रकाशित सुर्खियों से पता चल जाता है। संत-महात्मा कहते हैं कि यह शरीर मल-मूत्र की उत्पत्ति है और इसके अणु-अणु में मल-मूत्र ही व्याप्त है। इस शरीर से प्रेम करने का अर्थ है मलमूत्र से प्रेम करना। इसमें सौंदर्य का आरोपण विपरीत बुद्धि का ही परिणाम है। विषयों का चिंतन करने से मन विषयाकार ही बनता है तथा भगवान का चिन्तन करने से मन भगवान में लीन हो जाता है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध में भगवान श्रीकृष्ण परम भक्त उद्धवजी से ऐसा ही कह रहे हैं-

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते।।

भगवान के भजन में संलग्न साधकों के लिए विषयी पुरूषों एवं स्त्री का दर्शन जहर खाने से भी अधिक अमंगलकारी बताया गया है। आकर्षक भोगों से भरा हुआ यह जगत दूर से तो बड़ा सुन्दर, सुखदायक एवं सुहावना लगता है परन्तु वास्तव में यह एक विषधारी नाग की तरह है जो दिखाई तो बड़ा कोमल देता है, किन्तु स्पर्श करते ही व्यक्ति को यमलोक पहुँचा देता है। जिन लोगों के पास धन-सम्पत्ति, मान-बड़ाई, पद-प्रतिष्ठा आदि भौतिक पदार्थ की विपुलता है, उनको यदि हम सुखी और सौभाग्यशाली समझते हैं तो इसका मतलब यह है कि हमारे मन में भी विषय-भोगों के प्रति प्रबल आकर्षण बना हुआ है। यथार्थ में तो ऐसे लोग अत्यन्त शोकजनक स्थिति में फंसे हुए हैं। सौभाग्य-दुर्भाग्य का मापदण्ड केवल एक ही है और वह यह है कि यदि हमारा मन परम पिता परमेश्वर में आसक्त है तो सौभाग्य की कोई सीमा नहीं है और इसके विपरीत यदि हमारा मन संसार के विषय-भोगों, नश्वर पदार्थों आदि में फंसा हुआ है तो फिर हमारे दुर्भाग्य का कोई अन्त नहीं है। यहां संसार को जिसे असार कहा गया है, वहां छोटा-बड़ा बनने में कोई सार नहीं है। न जाने हम कितनी बार स्वर्ग के अधिपति इन्द्र बने होंगे और कितनी बार कीट-पतंगे।

मनुष्य जीवन की सार्थकता तो इसी में है कि हम विषय-वासनाओं के विकारों से मुक्त होकर अंश के स्थान पर अंशी हो सकें, अनन्यमन से ईश्वर के साथ जुड़ सकें, शेष तो सब व्यर्थ है, दुर्भाग्यजनक है। तुलसीदासजी ने क्या सुन्दर बात कही है-

अरब खरब लौं द्रव्य है, उदय-अस्त लौं राज।
तुलसी जो निज मरण है, आवै केहि काज।।

श्रुति कहती है कि जिसे महान पुण्य के प्रताप से परम दुर्लभ मानव शरीर मिला हो और फिर उसमें श्रुतियों का रहस्य समझने का अधिकार वाला पुरूष-शरीर प्राप्त हुआ हो, इतने पर भी जो मूर्ख अपनी मुक्ति के लिए यत्न नहीं करता, वह तो आत्म हत्यारा है। जिस शरीर से परमपद की प्राप्ति करनी थी, उसका उपयोग विषय-भोग में करके मनुष्य अपनी मूर्खता से मानों घुँघची लेकर बदले में पारसमणि दे रहा है अर्थात अपने लिए ही अपनी कब्र खोद रहा है-

लब्धवा कथंचिन्नरजम दुर्लभं तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्।
यस्त्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढ़धीः सह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात्।।

मिथिला नरेश महाराज जनक के गुरू अष्टावक्रजी ने कहा है-

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्तयज।
क्षमार्ज्जवदयातोषं सत्यं पियूषवद् भज।। (अष्टावक्र गीता, सूत्र 2)

अर्थात हे प्रिय! यदि तू मुक्ति चाहता है तो विषयों को विष के समान छोड़ दे और क्षमा, सरलता, दया, सन्तोष और सत्य को अमृत के समान सेवन कर।

सत्यापन

सत्यापित किया जाता है कि उक्त आलेख मौलिक तथा अप्रकाशित है।

(ताराचन्द आहूजा)

प्रस्तुति

(ताराचन्द आहूजा)
निदेशक, धार्मिक पुस्तकालय,
हंस विहार मंदिर, 4/114, एस.एफ.एस.,
अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-302020
फोन नं: 0141-2395703